द्‌वितीय अध्याय

"आलोच्य उपन्यासों का कथ्य"

द्वितीय अध्याय

''आलोच्य उपन्यासों का कथ्य''

प्रस्तावना :-

कथा कहने की प्रवृत्ति मनुष्य में युग-युग से निरन्तर प्रवाहमान है। वेदों और उपनिषदों जैसे धार्मिक ग्रंथों में धार्मिक, दार्शनिक और नैतिक शिक्षाओं को सूत्रों के साथ कथारूप में भी निबद्ध किया गया है।

उपन्यास में वर्णित सभी घटनाओं, कार्यव्यापारों का सन्निवेश कथानक के अंतर्गत होता है। ''कथ्य या कथानक के लिए प्रचलित शब्द है - 'कथावस्तु', 'विषयवस्तु', 'इतिवृत्त', 'कथा', 'वस्तु', 'वृत्त' आदि।''[1] कथानक अथवा कथावस्तु उपन्यास का मूल तत्त्व है जिसका महत्त्व अन्य तत्त्वों की अपेक्षा निश्चित ही ज्यादा है।

अलका जी ने अपने उपन्यास 'कलिकथा : वाया बाइपास' में कथानक को सोलह भागों में बाँटा है। यह सोलह भाग मिलकर एक अर्थपूर्ण कथानक तैयार होता है।

'शेष कादम्बरी' में भी कथानक को छोटे-छोटे शीर्षकों में विभाजित किया है। और हमारे सामने एक कथा कायम रखने की कोशिश की है। उसी प्रकार 'कोई बात नहीं' में भी छोटे-मोटे शीर्षकों से कथानक को प्रस्तुत किया है।

उपन्यास में उपलब्ध कथानक अपने रचना विन्यास और संगठन में विशिष्ट होता है।

कथानक के प्राय: दो भेद किए जाते है -

1) सरल कथानक।

2) गुंफित कथानक / जटिल कथानक।

सरल कथानक में एक ही कथा कही जाती है, उसमें प्रासंगिक कथाएँ नहीं होती। गुंफित कथानक में एक या दो या इससे ज्यादा कथाएँ होती है। कथानक अथवा कथावस्तु (Plot) में भी घटनाओं का अनुक्रम से संगठित वर्णन होता है किंतु इसमें कार्यकारण के संबंध को प्रमुखता दी जाती है और आगे की घटनाओं का कोई न कोई उचित कारण दे दिया जाता है। 'राजा मर गया और तब

---

1. **डॉ. सुरेश बाबर - भीष्म सहानी के साहित्य का अनुशीलन, पृ. 172.**

रानी मर गई' या एक कथा (Story) है। 'राजा मर गया और तब उसके शोक में रानी मर गई' यह कथानक है। इसी कथावस्तु या कथ्य का अर्थ एवं स्वरूप जानना आवश्यक है।

2.1 कथावस्तु का अर्थ :-

उपन्यास में कथावस्तु का वही स्थान होता है जो शरीर में हड्डियों का हैं। कथावस्तु के आधार पर उपन्यास का संपूर्ण ढाँचा खडा होता है। "कौतूहल, जिज्ञासा उपन्यास के कथानक की मुख्य विशेषताएँ है।"[1] उपन्यास में कथानक का प्रस्तुतिकरण वर्णनात्मक, आत्मकथात्मक, पत्रात्मक, डायरी जैसी अनेक शैलियों में किया जाता है। उपन्यासकार कथानक का चयन इतिहास, पुराण अथवा समसामायिक जीवन में से करता है। और अंत में कहा जा सकता है कि कथा समकालीन हो, इतिहास पुराण की हो या चाहे और कुछ हो, पर रोचकता न हुई तो सब फेल। कथानक का शब्दकोशीय अर्थ है - "कथा, छोटी कथा, कहानी, कथा या कहानी का सारांश।"[2]

2.1.2 कथावस्तु का स्वरूप :-

मानव जीवन की गतिशीलता, घटनामय जीवन का चित्रण कथावस्तु के माध्यम से होता है, व्यावहारिक दृष्टि से कथावस्तु को निम्न भागों में विभक्त किया जा सकता है -

2.1.2-1 आदि भाग (प्रारंभ) :-

उपन्यास का आरंभ महत्त्वपूर्ण होता है। कभी-कभी इसी के आधारपर उपन्यास का भविष्य निर्भर होता है। उपन्यास का आरंभ रोचक, हृदयग्राही तथा कुतूहलवर्धक होना आवश्यक है। उपन्यास का आरंभ लेखक पर निर्भर होता है, इसलिए उसका आरंभ भिन्न भिन्न होता है। कुछ उपन्यासों का आरंभ स्थल, काल, वातावरण, प्रकृति चित्रण से होता है। कुछ का आरंभ पात्रों के वार्तालाप से होता है। शिल्प की दृष्टि से वही आरंभ सफल है जो प्रभावशाली है।

2.1.2-2 मध्य भाग :-

जिस प्रधान विषय या समस्याओं को लेकर उपन्यास आरंभ होता है, उसी का विकास-विस्तार मध्य में होता है। 'शिल्प' की दृष्टि से इसका विकास सहज स्वाभाविक रीति से होना चाहिए, जिससे पाठकों को उसके प्रति विश्वसनीयता प्रतीत हो।

---

1. **डॉ. सुरेश बाबर - भीष्म सहानी के साहित्य का अनुशीलन, पृ. 172.**
2. **नालंद विशाल शब्दसागर - आदीया बुक डिपो, नई दिल्ली, संस्करण 1983.**

2.1.2-3 चरम सीमा (निष्कर्ष बिंदू) :-

चरम सीमा में उपन्यास की कथा चरमोत्कर्ष को प्राप्त करती है। चरम सीमा से उपन्यास के सभी घटकों में एकता दृष्टिगत होती है। चरम सीमा वह स्थिति है, जहाँ कथा की गति तीव्रतम होती है। संघर्ष यहाँ पर प्रबल होता है।

2.1.2-4 समापन या अन्त :-

उपन्यास की कथा का आरंभ जितना ही महत्त्वपूर्ण होता है अन्त भी प्रभावपूर्ण है तो वह उपन्यास सफल होता है। श्रेष्ठ उपन्यासों में अंत या समापन तथा आरंभ से संबंध होता है।

इस प्रकार उपन्यास की कथावस्तु की चार स्थितियाँ होती है - प्रारंभ, मध्यभाग, निष्कर्ष-बिंदू और अंत। चरम सीमा पर निष्कर्ष बिंदू होता है। अत: इन्हीं अवस्थाओं में से होकर कथावस्तु बनती है। कथावस्तु उपन्यास की रीढ़ है। उपन्यास की कथावस्तु लेखक के जीवन की उपज होती है। उपन्यास के अन्य सभी तत्वों में कथावस्तु प्रधान और अनिवार्य तत्त्व है।

2.1.3 आलोच्य उपन्यासों की कथावस्तु का अनुशीलन :-

कथाकार अलका सरावगी के 'कलिकथा : वाया बाइपास' उपन्यास को साहित्य अकादमी का पुरस्कार (रचनाकाल 1998) सन 2001 में प्राप्त हुआ। तभी से वह हिंदी साहित्य की बहुचर्चित कथाकार बन गयी। 1996 से वह कहानियाँ लिखती रही है। प्रस्तुत अध्याय में 'कलिकथा : वाया बाइपास', 'शेष कादम्बरी' और 'कोई बात नहीं' आदि तीन उपन्यासों की कथावस्तु का अनुशीलन किया गया है।

2.1.3-1 कलिकथा : वाया बाइपास (रचनाकाल 1998) :-

वास्तव में बहुत कम ऐसी कृतियाँ होती है जो एक साथ चकित और मुद्रित करती है। युवा कथा लेखिका 'अलका सरावगी' का पहला उपन्यास 'कलिकथा : वाया बाइपास' इसी तरह की कृति है, जिसे एक युवा प्रतिभा ने लिखा है। यह उपन्यास आजादी के पचास साल के समय अपने ढंग से किया गया आकलन है। इस उपन्यास का आकलन एक विशेष ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य में किया गया है। यह परिप्रेक्ष्य उपनिर्देश के उस दौर से शुरू होता है जब अठ्ठारहवी सदी में अँग्रेज सरकार भारत में अपनी जडे जमा रही थी। वह अपने लिए एक सार्थक वर्ग की तैयारी कर रही थी। यहाँ से शुरू होकर यह उपन्यास भारत के आजादी के लडाई के कुछ प्रसंगों को छूते हुए आज तक पहुँचता है और यह प्रश्न उपस्थित करता है कि जिन मूल्यों को और स्वप्नों को लेकर यह लडाई लडी गयी थी, उनका क्या हुआ ? क्या सच में वे सपने पूरे हुए ? जो आजादी के पूर्व हमने देखे थे।

उपन्यास की कहानी कोलकाता में बसे किशोर बाबू नामक एक मध्यमवर्गीय मारवाडी व्यक्ति के इर्द-गिर्द घूमती रहती है। आजादी की लड़ाई में निर्णायक वर्ष (सन 1925) में जन्में किशोर बाबू को जीवन के प्रौढावस्था में दिल का ऑपरेशन करना पडता है और इसके बाद उनकी दुनिया और स्वभाव में तीन जिंदगियाँ जी लेते है। पहली जिंदगी अपने स्कूल के मित्र सुभाष का भक्त शांतनु और गांधी प्रेमी अमोलक के साथ गुजारते हैं। जिसमें सन 1940 से 47 के उथल-पुथल के दिनों का वर्णन है। इसमें सन 1943 का 'बंगाल का अकाल' सन 1946 की 'द ग्रेट कैलकटा किलिंग' और 1947 का विभाजन आदि का अंतर्भाव होता है।

दूसरी जिंदगी उसके बाद के पचास सालों की है, जिसमें पहली जिंदगी की छाया तक नहीं। इस काल में वे केवल कारोबार देखते है। तीसरी जिंदगी बाइपास ऑपरशेन के बाद उस वर्तमान से शुरू होती है जो अभी हर वक्त हमारे आस-पास उपस्थित है।

उपन्यास की शुरूआत ही ऐसी हुई है कि किशोर कोलकाता के गलियों में घूम रहा है। इस वक्त उनके दिल का ऑपरेशन होने के बाद उनके स्वभाव में अचानक परिवर्तन आता है। कोलकाता के रोड पर घूमते-घूमते वे अपन बचपन की स्मृतियों में पहुँच जाते हैं और अपने परिवार का इतिहास भी याद करते है। बचपन में किशोर के दो गहन मित्र थे - शांतनु और अमोलक। शांतनु बंगाली था और सुभाष बाबू का भक्त था तथा अमोलक गांधीवादी था। अपने समय की बडी धारणाओं से टकराते हुए किशोर, शांतनु और अमोलक की अपनी-अपनी धारणाएँ है और जिद्द हैं, पर बालक किशोर अपने मारवाडी समाज के विश्वासों में कैद है।वह जब कभी बाहर निकलने की कोशिश करता है तो एकभीरूता उसे दबोच लेती है। लेकिन उसे इस बात की अनुभूति लगातार होती है कि कैसे मारवाडी समाज अपने समय की ऐतिहासिक घटनाओं और हलचलों से प्रतिबद्धता के साथ जुड नहीं पाता। उसके परदादा रामविलास अँग्रेजों के सहयोगी है,हैमिल्टन साहब के मित्र थे। किशोर मारवाडी के घरों में कैद नारी की स्थिति भी देखता है।

किशोर बाबू का जीवन इसी तरह एक ढरे पर जीते हुए खत्म हो जाता है। बाइपास सर्जरी के बाद वे सवाल फिर उनके मन में बार-बार आते है। इसी कारण वे तरह-तरह की ऐसी हरकते करते हैं, जिन्हें उनकी पत्नी और बच्चे एक तरह का पागलपन समझते है। किंतु किशोर बाबू इन सवालों से जूझते है और इसी माहोल में रहते हुए किशोर बडा होता है और अपना जीवन मध्यवर्ग के ढरें से जीने लगता है। हालाकि उसे इस बात का अफसोस भी है। किशोर बाबू इन सवालों से जूझते

है इसी क्रम में उन्हें यह एहसास हो जाता है कि वे मूल्य ध्वस्त हो चुके हैं, जो स्वतंत्रता, संग्राम में बने थे। मध्यवर्गीय नई पीढ़ी अब बहु राष्ट्रीय कंपनियों की पक्षधर हो चुकी है।

अर्थात इस उपन्यास के कथानक के बारे में संक्षेप में हम यह कह सकते है कि अलका जी ने 'कलिकथा : वाया बाइपास' में मध्यमवर्गीय मारवाडी परिवार की पाँच पीढ़ियों की संघर्ष कथा प्रस्तुत की है। इस कथा में प्लासी युद्ध (1757), अंग्रजों का साथ देनेवाले अमीचंद से लेकर बाबरी ढाँचा विध्वंस (सन 1992) तक की कथा को ही नहीं बल्कि लालू, राबडी,सोनिया, ज्योती बसु और बहुराष्ट्रीय कंपनियों तक के रूप में इक्कीसवीं सदी में पर्यावरण प्रदूषण, पेट्रोल खत्म होने पर मोटरों के बेकार होने, कल कारखानों के बंद होने आदि तक की चर्चा मिलती है। उपन्यास की मुख्य पृष्ठभूमि में स्वाधीनता, संघर्ष, बंगाल की दयनीय स्थिति सन 1943 का अकाल, सुभाषचंद्र बोस की मृत्यु, महात्मा गांधी की हत्या, साम्प्रदायिक हिंसा आदि प्रसंग के साथ अंकित हुए है। मारवाडी औरतों की पीडा एवं बाजारवाद की भोगवादी मानसिकता से ग्रस्त मारवाडी समाज की नई पीढ़ी की अंत: संवेदनाएँ इस उपन्यास में उजागर होती है।

उपन्यास की शैली प्रमुखत: आत्मचरित्र पर आधारित है। एक साथ कई शैलियों में कहा गया यह उपन्यास अलग-अलग देशकाल में आगे पीछे चलता, पाठकों की ऐसी यात्रा कराता है, जिसमें वे चौकन्ने, रास्ता खोजे और उसे पाने के आनंद का अनुभव करें। इसमें अतीत, वर्तमान और भविष्य के बीच मानो काई विभाजन ही नहीं है। यह चक्कर मानो वर्तुलाकार कालचक्र है।

उपन्यास का किशोर बाबू के स्मृतिभ्रंश दिखाने में नाटकीयता है। आलोच्य उपन्यास में मारवाडी समाज में स्थित समस्याओं का इतिहास है। इसके साथ ही एक अस्वस्थ व्यक्ति के जीवन की खोजन ही इसकी मनोरंजकता है। 'बाइपास' इस उपन्यास का प्रतीकात्मक शब्द है, जिसका अर्थ आजके युगधर्म की ओर संकेत करता है। जो मूल समस्याओं से बचाकर बगल से सुविधाजनक रास्ते निकालने का प्रयास किया जाता है। उपन्यास इस युगधर्म की विडंबना को किशोर बाबू के बाइपास ऑपरेशन के माध्यम से उजागर करता है।

2.1.3.2 'शेष कादम्बरी' (2001) :-

अलका सरावगी का प्रसिद्ध उपन्यास है 'शेष कादम्बरी'। यह उनका दूसरा उपन्यास है जो नारी प्रधान रहा है। इसमें लेखिका ने कोलकाता शहर का ही वर्णन किया है। इस उपन्यास का मुख्य पात्र रूबी दी है। इसके केंद्र में ही सारा उपन्यास घूमता रहा है, रूबी दी 'परामर्श' नामक एक

सामाजिक संस्था चलाती है। अपने परिवार से वंचित रहकर उसको अपने आपको संभाला था। उसका पति सुधीर उसे छोडकर गया था और दो बेटियाँ थी। वह उसके पास नहीं थी। रूबी दी का जीवन अकेला, नीरस बन गया था।

रूबी दी हमेशा अपनी नातीन कादम्बरी से फोन पर बातें किया करती थी। उसीसे उसका मन हलका हो जाता था। कादम्बरी रूबी दी के जीवन का अभिन्न अंग बन गयी थी। जैसे - ''मैं - मैं कुछ लिख रही थी, कुछ कविताएँ यू-नो, पास-टाइम।''[1] इस प्रकार छोटी-छोटी बातें रूबी दी कादम्बरी से बताती है।

रूबी दी की संस्था में एक सविता नाम की लडकी आती है। इस लडकी को कोई अपने साथ नहीं रखना चाहता न माता-पिता, न भाई-बहन और न पति। एक दिन इसी सविता के मरने की खबर रूबी दी अखबार में पढ़कर अचंबित हो जाती है। लेकिन एक कोने में वह पडी है जो चल-फिर नहीं सकती थी। रूबी दी सविता को अपने घर ले जाती है। और उसे अच्छा करने की ठान लेती है। उस पर एक जुनून-सा सँवार होता है सविता को ठीक करने का। रूबी दी हर किसी को दया-सहानुभूति दिखाकर उसका मन जीत लेना ही उसके मन की या व्यक्तित्व की विषेशताएँ है।

रूबी दी एक समाजसेविका के साथ-साथ एक अच्छी नानी भी थी। रूबी दी ने अपने अंतिम दिनों में सारी वसीयत कादम्बरी के नाम कर दी। अपने स्वयं की इच्छा से उसने यह वसीयत कादम्बरी के नाम कर दी थी। उसकी नौकरानी सायरा इसके नाम पच्चीस हजार रूपए कर देती है। और अंत में कहती है कि शेष कथा कादम्बरी खुद लिखे और जैसे चाहे लिखे - 'ओवर टु कादम्बरी।'[2]

इस प्रकार रूबी दी एक समाजसेविका होने के साथ-साथ एक श्रेष्ठ नारी भी साबित होती है। जो नारी के विविध पहलुओं को निखारती है। अपने न होकर भी किस तरह औरों को अपना बनाया जाता है, यह आदर्श हमें रूबी दी में देखने को मिलता है।

2.1.3-3 कोई बात नहीं (2004) :-

इस उपन्यास में अलकाजी ने एक ऐसे लडके की दास्तान कहीं है, जो हमारे दिल को दहला देती है। शशांक जो एक अपंग लडका है। शशांक का जीवन चारों तरफ से तरह-तरह के कथा-

---

1. **अलका सरावगी - शेष कादम्बरी, पृ. 20.**
2. **वही, पृ. 199.**

किस्सों से घिरा है। एक तरफ आरती मौसी है, जिसकी प्राय: खेदपूर्वक वापस लौट आनेवाली कहानियों का अंत और आरंभ शशांक को कभी समझ में नहीं आता। दूसरी तरफ उसकी दादी की कहानियाँ है - दादी के अपने घुटन - भरे बीते जीवन की, बार-बार उन्हीं शब्दों और मुहावरों में दोहराई जाती कहानियाँ, जिनका कोई शब्द कभी अपनी जगह नहीं बदलता। लेकिन सबसे विचित्र कहानियाँ उस तक पहुँचती हैं जतीन दा के मार्फत।

शशांक को दादी माँ हररोज अपने घुटन-भरे जीवन की कहानियाँ सुनाती है। जिनको शशांक बडे चाव से सुनता है। उस पर अपनी राय भी देता है। दादी हररोज शशांक को कहानियाँ सुनाती रहती है। जतीन दा जो शशांक को हर शनिवार घूमाने ले जाता है। और वहाँ उसे बहुत सारी कहानियाँ सुनाता था। जतीन दा और शशांक की गहरी दोस्ती बन गयी थी।

शशांक की माँ शशांक को हमेशा अच्छा करने में लगी रहती है। स्पीच थैरेपिस्ट बुलवाती है शशांक को बोलना सिखाने के लिए। शशांक को लिखना,पढ़ना, हँसना सब वह सिखाती है। शशांक की माँ उसकी पहले-पहल की सभी बातें नोट कर लेती है उसे बडा आनंद आता है। जैसे - ''यह कौन-सा चमत्कार है? क्या वह बोला था - 'माँ' या उसे भ्रम हुआ ? वह फिर आवाज निकालता है - ममाँ। वह माँ को देखता है बिना पलक झपकाए और वह भी उसे उसी तरह देखती रहती है। फिर दोनों हँसने लगते है।''[1] यह पहली हँसी शशांक की माँ को बहुत आनंदित कर देती है। उसके ठीक होने के बाद की हर पहली बात उसे बहुत अच्छी लगती है। उसका पहला झगडा, पहला प्रतिवाद, पहली हिंसा, पहिली दया, पहला वादा आदि सभी बातें उसे जिस प्रकार छोटा बच्चा पहली बार बोलने लगता है उसी प्रकार शशांक की बातें उसे अच्छी लगती है। शशांक के पापा शशांक को दिलोजान से चाहते थे। ''तुम मेरी जान हो। यू आर माइ लाईफ।''[2] इस प्रकार उन्होंने अपने प्यार को दर्शाते हुए शशांक के सामने देवता के समान खडे रहते है।

आखिर माँ को अपने अंतर्मन ने ललकारा। हररोज वह प्रार्थना करती थी अपने बेटे के लिए उसे अच्छा करवाने के लिए। अंतिम में उसे अपने बेटे की कमी अटक ही जाती है। और विचार करने लगती है - ''काश सबकुछ ठीक होता। काश , काश, काश। कैसे वह अपने आपको यह कहने से बचती थी कि बहुत मुश्किल है किसी की कमी को सहना और वह भी अपनी बनाई हुई किसी चीज

---

1. **अलका सरवगी - कोई बात नहीं, पृ. 126.**
2. **वही, पृ. 219.**

की। अपनी ही संतान की।"[1] शशांक नादान होकर भी अपनी माँ की आँखों में यही सारी बातें आसानी से पढ़ लेता। लेकिन कभी कोई शिकायत नहीं करता। चुपचाप सह लेता था।

इस प्रकार शशांक का जीवन कई कहानी-किस्सों के साथ आरती मौसी की नटखट कथाओं के साथ और जतीन दा के कई ऐसे किस्से जो सबसे अलग होते थे, उनके साथ बितता है। शशांक की माँ शशांक के इस अधुरेपन से परेशान रहती थी। लेकिन शशांक यह सब जानता था, लेकिन कभी जताता नहीं था। उसे अपने आप में एक खिंचाव नजर आता था। अंतिम में यह सभी बातें शशांक के सामने आती है और अपने माँ-बाप को देखकर 'कोई बात नहीं' कहता है और इस प्रकार सभी शशांक से माफी माँगते है।

2.1.4 आलोच्य उपन्यासों की समीक्षा :-

2.1.4.1 'कलिकथा : वाया बाइपास' :-

अलका सरावगी का पहला और ताजा उपन्यास 'कलिकथा : वाया बाइपास' सदी के इस अंतिम चरण में एक सुखद आश्चर्य की तरह आया है। अनपेक्षित रूप से जितनी जल्दी चर्चित एवं पुरस्कृत (श्रीकांत वर्मा पुरस्कार-1997 के लिए) हो गया है, इससे यह विश्वास बनता है कि अच्छी रचना की कद्र में कोताही आज भी नहीं होती, न ही वह मीडिया की चकाचौंध में छिप ही स्कती।

'कलिकथा : वाय बाइपास' कलियुग की कथा है। नायक किशोर की जुबानी, उसकी छह पीढियों के माध्यम से कथा का यह कलियुग 1857 के स्वतंत्रता संग्राम से अब तक के डेढ़ सौ वर्षों का है। और यह उपन्यास इसी काल के युगजीवन की कथा है।

पहले पृष्ठ पर ही पता चलता है कि किशोर बाबू को उम्र के बहत्तरवें साल में हार्ट की बाइपास सर्जरी से गुजरना पडता और अस्पताल से वे सर में एक घाव लेकर आए। बस तब से उनका दिल व दिमाग पूरी तरह बदल गया। और बाइपास की यह वैज्ञानिक प्रक्रिया साहित्य के रूपायन का माध्यम बन गई। हृदय परिवर्तन (साथ में मस्तिष्क भी) का यह उत्तर आधुनिक संस्करण तो नहीं? क्योंकि बाद के किशोर बाबू का पूरा भावलोक गांधीवादी चेतना का प्रतिरूप लगता है और बचपन के उसके पक्के गांधीवादी मित्र अमोलक की आत्मा सीधे उनके अंदर प्रविष्ट हुई भी दिखाई जाती है। मेडिकल का यह 'बाइपास' शब्द और इसकी क्रिया का परिणाम उपन्यास को इतने प्रतीक संकेतों से भर देता है कि पूरी कृति प्रतीक में बदल जाती है।

---

1. **अलका सरवगी - कोई बात नहीं, पृ. 220**

बाइपास के बाद किशोर बाबू जो कुछ कहते हैं, और जिन मामूली प्रश्नों पर गैर मामूली ढंग से सोचते है उससे उसकी पत्नी व बेटा उन्हें पागल समझ लेते है, ''जो पागल नहीं है, उसे हर समय सतर्क रहना पडता है कि वह जो बोल रहा है, उसका क्या असर होगा। पागल आदमी अपनी मौज में रह सकता है। न किसी का डर, न कोई खतरा।''[1] और ऐसे बेखटके बोलने करने के अंजाम किशोर से दिलवाये गए है। बेटे की खातिर अपनी ही बेटी द्वारा तीसरा गर्भपात करने एवं बहू द्वारा भी माँ बनना टालने की कारगुजारियों पर उनके उद्गार इसके प्रमाण है। असल में बाइपास के सिले से आए इस बदलाव में किशोर बाबू इस गलत दुनिया के लिए बहुत सही और मानवीय संसार में बहुत मानवीय तथा जड दुनियादारी समाज के लिए गैर दुनियादार होकर सच्चे अर्थों में आउट साइडर हो गए है। मन में प्रश्न आता है कि क्या सर्जरी के बिना किशोर बाबू में ऐसे विचार नहीं आ सकते थे। तो इसकी संभावना तो सतत बनी रहेगी, पर यथार्थ में ऐसा होने के लिए किसी कारण की दरकार होगी। फिर क्या यह बाइपास व्यंग्य तो नहीं कि एक सही आदमी बनने-बनाने के लिए आज के समय में समाज की ऐसी ही शल्य-क्रिया करनी पडेगी। ऐसा हो पाता, तो कितना अच्छा....।

कथा तो बाइपास के बिना कही जा सकती थी। सीधे-सीधे कहने के कई या कोई भी तरीका हो सकता था, परंतु तब यह औपन्यासिक समृद्धि कतई न आ पाती, जो इस प्रयुक्ति एवं इसमें समाहित तथा इससे प्रस्फुटित व्यंजनाओं से आई है। तब यह एक सामान्य उपन्यास बनकर रह जाता। औपन्यासिक कला कर्म के तहत भले किशोर वक्ता-द्रष्टा भोक्ता-प्रस्तोता हो, और यह कथा युगजीवन की हो, परंतु अपने अभिधार्थ में तो वह किशोरकथा ही है। अत: युगजीवन के मर्म संकेतों उर्फ कलिकथा के बाइपासों को समझने के लिए किशोर को कसकर पकडे रहना होगा। और किशोरकथा गवाही में ''किशोर बाबू की एक जिंदगी में तीन जिंदगीयाँ जी गई है।''[2] यही विवेच्य युगजीवन के तीन भाग व आयाम है। ''देश की आजादी तक याने किशोर की बाइपास की उम्र तक उनकी एक जिंदगी थी।''[3] इसी में समाहित है वे पचहत्तर साल भी, जिसे सुनते-जानते किशोर बाबू बडे हुए। इसमें उनके परदादा रामविलास के पिता से शुरू होकर दादा-पिता से होती हुई किशोर के बचपन व किशोरावस्था तक का सब समाहित है। इसमें भाई, माँ-नाना-मामा आदि की कथाएँ भी शामिल है। जाहिर है कि यह अंश कलिकाल का बडा भाग है।

---

1. **अलका सरावगी - कलिकथा : वाया बाइपास, पृ. 205**
2. **वही, पृ. 109**
3. **वही, पृ. 109**

किशोर-परिवार की यह पूरी कथा इतिहासोन्मुख है। आजादी के समय से इसका बँटना व बनना तो इस कथा-योजना का प्रमाण है ही, परदादा के पिता का कोलकाता जाना हो राजनीति व इतिहास से प्रेरित है। उन्होंने 1858 के आंदोलन में हैमिल्टन साहब की जान बचाई थी - देशद्रोह वश नहीं, मानव स्वभाववश रेलवे लाइन बनते ही हैमिल्टन साहब सोने से मढ़ देने का वायदा करके उन्हें कोलकाता ले गए। हैमिल्टन साहब के जायज बेटे ने बाद में परदादा रामविलास को कोलकाता में बसाया-बनाया।

दादा-परदादा के द्वंद्व की मारकता स्वत: स्पष्ट है। यही संक्षिप्तता एवं सांकेतिकता ही इस 'कलिकथा' की 'बाइपास' शैली है - उपन्यास का प्राणतत्त्व। इसी प्रकार कथात्मक एवं विचारात्मक द्वंद्व में भी चलता है यह उपन्यास, जिसे किशोर की इस पहली जिंदगी के स्कूली जीवन में भी देख सकते है। उसके दो मित्र है - गांधी का पक्का अनुयायी अमोलक एवं सुभाष बाबू का कट्टर समर्थक शांतनु। इनके माध्यम से तत्कालीन नरम-गरम दलों की दो धाराओं के विमर्शों के साथ हिंदु-मुस्लिम दंगों के बरकस गांधीवाद व हिंदुवादी विचारधाराओं के द्वंद्व भी उभरे है।

किशोर के जीवन की 'दूसरी जिंदगी' उसकी उम्र के बाईस साल से बहत्तर साल (सर्जरी होने) तक ही है। कथाकार के साक्ष्य पर ''किशोर बाबू की जिंदगी के पचास वर्ष भारतवर्ष के लोकतंत्र के पचास सालों की तरह हैं, जिनमें आजादी की लढाई के आदर्शों की खुरचन तक नहीं रही।''[1] उन आदर्शों पर चलने के लिए उत्सुक, पर अपनी नियति से विवश किशोर बाबू भी आजादी के बाद इतना बदले कि उन्हें बहुत करीब से जानने वाले भी इस बदलाव को न जान सके। किशोर बाबू सीधे कमाने में जुट गए। फैक्ट्री खुली। साउथ कोलकाता में घर हो गया। कार आ गई। पाँच बेटी एक बेटे के पिता बने। उन्हें पढ़ाया- ब्याहा। इस बीच उस मामा - परिवार को भूल ही गए, जो कभी उनके व उनके परिवार के जीवन का, चाहे जैसा ही सही, आधार बना था। घर में डिक्टेटर बन गए ..... यही है स्वातंत्र्योत्तर विकास का जल्वा .... जिसके चरमकाल 1997 में किशोर की सर्जरी हुई और तब उपन्यास के साक्ष्य पर उनकी तीसरी जिंदगी शुरू हुई।

कहने की जरूरत नहीं कि इसी तीसरी जिंदगी के आईने में ही बाकी उक्त दोनों जिंदगियाँ नुमायाँ हुई - किशोर बाबु एवं उनकी पत्नी आदि की यादों में, फाइलों के जरिए और पुरानी डायरियों -पत्रों आदि के माध्यम से, जो फ्लैश बैक पुष्ट-प्रमाणित तो करते है, उसकी टेकनीकल

---

1. **अलका सरावगी - कलिकथा : वाया बाइपास, पृ. 109**

मोनोटोनी को तोडते हुए ताजगी एवं विविधता भी लाते है। लेकिन इस दौर को चेताने के लिए 'कलिकथा : वाया बाइपास' में गांधी के प्रतीक पात्र अमोलक को जिंदा रखना एक तरफ इन भौतिक व नव उपनिवेशवादी मूल्यों की अवहेलना व तिरस्कार का संकेतपूर्ण निदर्शन करता है, तो दूसरी तरफ आजाद भारत में होते सब कुछ की पोल खोलते हुए हर ऐसे मद्दे के विरोध की आवश्यकता भी खुल सकती है।

'बाइपास' का प्रतीक तब स्पष्टता राष्ट्रीयता रूप लेकर पूरी कथा को रूपक में परिणत कर देता है, जब अंतिम पृष्ठ पर तीनों मित्र एक जनवरी, दो हजार ईसवी को आजादी मिलने के पहले किए अपने कौल के मुताबिक मिलते है। वहाँ शांतनु बचपन के दिनों की तरह किशोर को समझाते हुए कहता है - "हमने किंसी समस्या के कारणों को मिटाने की कभी कोशिश नहीं की। हर समस्या को बाइपास करने के रास्ते ढूँढते रहे। पर अब तो कोई बाइपास काम नहीं करता।"[1] इतने विविध अर्थसंकेतों व रूपकों का व्यंजक मूलशब्द 'बाइपास' है और किशोर बाबू की बाइपास सर्जरी हुई थी- बहू की आधुनिकोत्तर कारगुजारियों के कारण। अत: जब बहू ने कॉलेज में पढ़ने, परंतु देर रात को क्लब से डान्स करके आने और पति से झगडा होनें पर थर्मामीटर से पारा निकालकर खा लेने की बात न पचा सके थे और सपने में अपने पिता (संस्कार मन) को बहू के पैरों पर पगडी रखकर गिडगिडाते देखा था।

इसी सिलसिले में एक ऐसे दृश्य का वर्णन है, जिसमें दुनिया को सबसे ताकतवर देश में अचानक प्रकृति के पंचतत्वों की गडबडी से पेड-पौधे मरने लगे। ऑक्सिजन की कमी हो गई और साँस लेना दूभर हो गया। इससे लोग गाँवों की तरफ धरती की गोद में भागने लगे। जिस भविष्यदर्शन का यह काल्पनिक दृश्य है, कल-कारखाने, डीजल-गैस-पेट्रोल आदि के बढते प्रदूषण, मशीनी सभ्यता में लुप्त होते मनुष्य आदि के कारण उसकी संभावना से इन्कार नहीं किया जा सकता। अनुमान लगाए जा रहे हैं। परंतु कथा में वह पेबंद तो है। रामराज्य की कल्पना साहित्य में की गई, जो साकार न हो सकी, पर उसकी कामना है।

इसी तरह एवं विशफुल थिंकिंग की भी फैंटसी का दृश्य है, जिसमें अमोलक की आत्मा किशोर को छोडकर जा रही है और पार्लियामेंट जाकर डंडा लेकर सब तोडने-फोडनेवाली है। तभी

---

1. **अलका सरावगी - कलिकथा : वाया बाइपास, पृ. 215**

अंत में शांतनु - किशोर से मिलने आ सका । असली अमोलक तो फिर आत्मा किस की आई थी किशोर में ? क्या डुप्लीकेट की ? यह सब कितना फिल्मी है, कितना प्रतीकात्मक !

इस प्रकार 'कलिकथा : वाय बाइपास' के चुनाव में अद्‌भूत जहनियत है। अभिव्यक्ति में गजब का संयम है, दृश्यगत बिखराव में दृष्टिगत प्रासंगिकता है। कथात्मक संगति है। संप्रेषण की सटीकता है और यह सब रचनात्मक सोद्‌देश्यता के तहत है।

2.1.4-2 'शेष कादम्बरी' :-

अलका सरावगी का यह दूसरा उपन्यास है। एक सदी से दूसरी सदी तक के समय और स्मृतियों के इतिहास के तनाव से नई उत्सुकता जगाता है और साथ ही उपन्यास के परिचित ढाँचे को एक बार फिर तोडने की नई चुनौती भी पैदा करता है।

उपन्यास की शुरूआत ही एक आवेदन से होती है जो रूबी दी के संस्था में एक केस आता है सविता नाम की लडकी का। यह उपन्यास रूबी दी के इर्द-गिर्द ही घुमता रहता है। उसके 'परामर्श संस्था' में ढेरों केस आते रहते हैं। इन्हीं को सुलझाने का काम रूबी दी करती है। रूबी दी सत्तर साल की औरत है। रूबी दी सविता की परेशानी को सुलझाना चाहती थी। सविता को उनके घरवालों ने बेदखल कर दिया था। रूबी दी कहती है कि, ''इस लडकी में भला ऐसा क्या दोष है कि कोई इसे अपने साथ नहीं रखना चाहता - न पिता, न बडे भाई - भाभी, न पति ?''[1] इस तरह रूबी दी सविता की उलझनों में डूबी रहती है। रूबी दी हमेशा अपने दिमाग में संस्था में आए केस का विचार करती दिखायी देती है। रूबी दी के इस अच्छे विचार से अच्छे लोग दिमाग में स्मृतियों से जो सगे लगते है, उनको हमेशा याद कर लेती है।

रूबी दी के इस पुराने लोगों को याद करने की आदत से उनके दिमाग में उनके स्कूल की सिस्टर मार्गरिट का एक किस्सा याद आता है। उस किस्से को याद करते-करते रूबी दी अपने डायरी में लिखी बातों में खो जाती है। 'शेष कादम्बरी' यह उपन्यास रूबी दी और उनकी नातिन कादम्बरी के फोन पर होनेवाली बातों पर बढता जाता है। अलका जी ने इस उपन्यास का शीर्षक कादम्बरी के नाम पर आधारित रखा है। जिसका अर्थ कथा या उपन्यास भी है। इस शीर्षक का अर्थ तब्र पुर्ण होता है जब रूबी दी सारी जायदाद सविता, कादम्बरी और सायरा के नाम कर देती है और आगे की सभी

---

1. **अलका सरावगी - शेष कादम्बरी, पृ. 7**

जिम्मेदारी खूद संभाल ले। लेखिका ने उपन्यास का अलग-अलग कथा में जरूर बाँटा है, लेकिन उससे मुख्य कथा अंत तक प्रविष्ट होती है।

इस उपन्यास में रूबी दी और कादम्बरी फोन पर बातें करती दिखायी है। रूबी दी हमेशा अपनी नातिन का हालचाल पूछती रहती है। उसे सही गलत होने का एहसास दिलाती है। एक माँ की तरह हमेशा उसका ख्याल रखती है।

रूबी दी का हररोज का दिनक्रम रहता था। रूबी ने थिएटर रोड के सामने एक मकान लिया था। जिसमें परामर्श संस्था चलायी जा रही थी। वह मकान आगे झुका हुआ था। उसको हमेशा हरे रंग की सफेद ढक्कनवाली कलम टेबुल पर रखकर नाप लेती थी कि क्या यह भी आगे की तरफ खिसका तो नहीं ? तब रूबी दी ने अपने जीवन का एक दूसरा अर्थ निकालती है। ''यों भी इस हरी स्याही वाली कलम की तरह ही जीवनभर पलटे खाकर आगे सरकने और फिर रूक जाने की उनकी नियति के कारण उनकी समस्या अहं से मुक्त होने की न होकर अपने आपको, या कि जैसा स्वतन्त्रता कामी औरते कहा करती है, अपनी अस्मिता को ढूँढने की रही है।''[1] जीवन में मनुष्य के जीने की कोई खास वजह न होकर भी संसार में वह कैसे, किस तरह, क्यों रह रहा है, इसका कोई तो रहस्य जरूर होगा। थिएटर रोड के सामने जो पुरानी इमारत थी। उस इमारत को देखकर रूबी दी को कुछ याद आता है। उस इमारतों की यादों से उसे बहुत कुछ याद आता है, इस बहुमंजिलें इमारत जैसी कोलकाता शहर में दूसरी कोई खूबसूरत इमारत नहीं थी। लेकिन इस इमारत का अब नामों निशान नहीं रहा, उसी प्रकार जीवन की सुन्दरता भी कही खो गयी थी।

इस प्रकार 'शेष कादम्बरी' में अनेक प्रकारों से रूबी दी का व्यक्तित्व सामने आया हुआ है। नारी के समाज सेविका रूप का यहाँ यथार्थ अंकन किया गया है।

2.1.4.3 कोई बात नहीं :-

'कोई बात नहीं' यह उपन्यास प्रमुख पात्र शशांक के आसपास घूमता रहता है। शशांक सत्रह साल का एक लडका है जो दूसरों से अलग है, क्योंकि वह दूसरों की तरह चल और बोल नहीं सकता। शशांक अपंग होने से या उसमें कमियाँ होने से उससे कोई दोस्ती करना नहीं चाहता। आज भी जमाने के लोग एक अपंग लडके को अपनाना नहीं चाहते। कुछ ही लोग ऐसे होते है, जो इन सभी

---

1. **अलका सरावगी - शेष कादम्बरी, पृ. 15**

कमियों के साथ दोस्ती का हाथ बढ़ाते है। स्कूल में शशांक का एकमात्र दोस्त है, एक अंग्लो-इंडियन लडका जिसका नाम है आर्थर सरकार, जो उसी की तरह एक किस्म का जाति बाहर या आउटकास्ट है - अलबत्ता बिलकुल कारणों से।

शशांक की माँ हमेशा शशांक को बडा होते देखना चाहती है। हर मुसिबत के वक्त उसे साथ देती है। एक माँ ही है जो शशांक की हर हरकत को समझती है और उसे सुलझाने की कोशिश में लगी रहती है। माँ ने ही शशांक को बोलना सिखाया उसे हँसना सिखाया। जब शशांक पहली बार 'माँ' शब्द का उच्चारण करता है तो उसे इतना आनंद हो जाता है कि वह उसे भ्रम है या कोई सपना ऐसा लगता है। इस प्रकार शशांक की माँ शशांक में हर वक्त सुखमयता की अनुभूति देखना चाहती है।

उसी प्रकार माँ शशांक को सुधारने के लिए अनेक सारी कोशिशें करती है, जैसे - रोमन अक्षरों में हिंदी लिखना बहुत मुश्किल है इसलिए एक सफेद मोटे गत्ते पर हिंदी के छोटे छोटे एक जैसे शब्दों का अलग-अलग रंगों में गुच्छा बनाती है। और इसी प्रकार शशांक इसमें से शब्दों की खोज करता है। यह उसे बडा आसान लगता है। इसी प्यार के साथ दोनों का झगडा भी हमारे सामने आता है।

मोटे तौर पर इसे शारीरिक रूप से कुछ अक्षम एक बेटे और उसकी माँ के प्रेम और दुख की साझेदारी की कथा के रूप में देखा जा सकता है, पर इसका मर्म एक सुंदर और सम्मानपूर्ण जीवन की आकांक्षा है, बल्कि इस हक की माँग है। माँ और पापा दोनों शशांक के हर मौके-बमौके उसे ठीक से बैठने और चलने की सीख देते रहते। यह सब सीखाते-सीखाते कब शशांक बडा हुआ यह मालूम ही नहीं होता। हर कोई शशांक को अच्छा करने की कोशिश में लगा हुआ है। उसकी छोटी बहन जया, अनंत जो स्कूल का मित्र है, चाचा-चाची, दादी सभी शशांक को अच्छा बनाने में लगे हुए है। अनंत जो स्कूल का दोस्त है वह हमेशा शशांक डेनिस सर के किस्से सुनाता है, क्योंकि वह हमेशा हर बच्चे को पेन माँगता है और अनंक का इसमें इरादा यह होता है कि शशांक खुलकर हँसता रहे।

शशांक धीरे-धीरे ठीक हो रहा है। माँ ने चेअर-कमोड की जगह अब चक्केवाली पढ़ने वाली कुरसी को उसके पलंग के पास लाकर खडा किया है। इससे वह अपने आप बाथरूम जा सकता है। माँ को अब विश्वास हो गया है कि शशांक जल्दी ठीक हो सकता है। ''तुम क्या सोचते हो कि तुम ऐसे ही घर में पडे रहोगे ? तुम भी जल्दी स्कूल जाओंगे।''[1] इस प्रकार पूरे आत्मविश्वास के साथ शशांक को कहती है।

---

1. **अलका सरावगी - कोई बात नहीं, पृ. 151**

इस तरह हमेशा अपने बेटे को अच्छा होने के आत्मविश्वासपूर्ण सपने शशांक की माँ देखती रहती है। शशांक को इसकी हरकतें कभी-कभी अजीब-सी लगती है। अंतिम में माँ को वहीं महसूस होता है, जो किसी भी इन्सान को महसूस होगा। उसे स्वयं अपने बेटे की कमी बदसूरत लगती है, कैसे क्षण निर्दयता से उनके दिलों को काट-पीटकर टुकडे-टुकडे कर डालता था।

निष्कर्ष :-

1. निष्कर्षत: कहना सही होगा कि लेखिका अलका जी द्वारा जो विषय चुने गए हैं वह समाजबोध के सही पहलूओं को दर्शाते है। इसमें नाममात्र भी कही कृत्रिमता दिखायी नहीं देती। पारिवारिक जीवन से संबंधित उपन्यासों में अधिकतर समाज का और परिवार के संबंधों का चित्रण किया गया है। उपन्यासों में अधिकतर आधुनिक समस्याओं को उजागर किया है। आधुनिक युग में जो समस्या उभरकर आएगी वह उसे अलकाजी ने 'कलिकथा : वाया बाइपास' में चित्रित किया है। इसे हम भविष्यवाणी मान सकते है, भविष्य में आनेवाली प्राकृतिक आपदा, भूखमरी, राजनैतिक समस्याएँ, औदयोगिक क्षेत्र की समस्या आदि को उभरा है।

2. अलका जी ने अपने उपन्यासों में नारी पात्रों को प्रमुख मानकर उनकी समस्याओं को चित्रित किया है। नारी का अकेलापन, वेश्या जीवन, विधवा जीवन, पति का पत्नी को सहयोग न होना, पिता समान पुरूषों का अपने बेटी समान लडकी को गंदी नजर से देखना आदि समस्या निर्माण होने का कारण समाज के साथ पुरूषों का भी बहुत बडा हाथ होता है। नारी को अपने ही परिवार में घुटनभरी जिंदगी निभानी पडती है। अपने पिता समान ससुर के सामने आने की इजाजत नहीं होती न ही उनके साथ खाना खाने की और न ही नजरे मिलाकर बात करने की ऐसी घुटन भरी जिंदगी को लेखिका ने अपने उपन्यास में महत्त्वपूर्ण स्थान दिया है और उस पर व्यंग्य कसा है।

3. विवेच्य उपन्यासों का अध्ययन करने के पश्चात यह परिलक्षित होता है कि अलका जी ने अपने उपन्यासों में अलग-अलग समस्याओं को सामने लाया है। इनके तीनों उपन्यासों के विषय हटके है। 'कलिकथा : वाया बाइपास' स्वातंत्र्यपूर्व और स्वातंत्र्योत्तर घटनाओं को परिलक्षित करता है। इसमें गांधीवाद, सुभाष बाबू के विचारों को उभारा गया है। उसी के साथ मारवाडी समाज के जीवन का दर्शन और कोलकाता शहर की दरिद्रता को दर्शाया है।

'शेष कादम्बरी' में नारी की समस्याओं को दर्शाया है और इस उपन्यास की नारी कामकाजी नारी है जो पुरूषों के कंधे से कंधा मिलाकर अधिकार संपादन कर रही है। लेकिन समाज में उसे यह स्वतंत्रता निराशा, कुंठा, अकेलेपन से पीडित बनाती है। 'कोई बात नहीं' में एक बच्चे की कहानी को चित्रित कर उसकी विकलांगता उसे किस प्रकार खलती है और परिवार में उसके माता-पिता उसका कितना साथ देते है प्रस्तुत उपन्यास में अलका जी दर्शाती है।

4. विवेच्य उपन्यासों में सामाजिक जीवन, राजनीतिक जीवन, दाम्पत्य जीवन, वेश्या जीवन, विधवा जीवन, अकेले नारी का जीवन आदि को दर्शाया है। 'शेष कादम्बरी' की माया बोस को परिस्थितियों ने वेश्या बनाया था। पहले वह अच्छी लडकी थी। कॉलेज में वह बहुत इज्जतदार लडकियों में उठती-बैठती थी। यह बाप समान मास्टरजी का शिकार हो जाती है। इससे पिता-पुत्री के संबंध को एक ऐसी मोहर लगा दी है कि इससे पवित्रता ही नष्ट हो जाती है। समाज के सामने माया बोस एक वेश्या है लेकिन मास्टरजी तो एक राक्षस है जिसने अपने घर में पनाह दी उसी को डँसना कितनी घिन्नौनी बात है। इसी बात को या पिता-पुत्री के संबंध पर अलका जी ने उंगली उठायी है और समाज को जागृत किया है।

5. विवेच्य उपन्यासों में अलका जी ने कई ऐसी समस्याओं को उभारा है जिसका समाज में प्रभाव या फैलाव बढ रहा है। 'शेष कादम्बरी' की रूबी दी स्वयं एक समाजसेविका है, लेकिन उसे अपने परिवार का साथ नहीं मिलता। न पति का न अपने बच्चों का। लेकिन उनकी नातिन ही इनका सबसे बडा आधार बनती है। यहाँ पर लेखिका ने अपने से बेगाने ही कितनी सहायता करते है, इसका चित्रण मार्मिकता से किया है। 'कोई बात नहीं' में शशांक को हर शनिवार को उसका दोस्त जतिन दा घूमाने ले जाता है और हर तरह की कहानियाँ सुनाकर उसे उत्साहित कर देता है। इन दोनों उपन्यासों में पारविारिक संबंध कितने कर्तव्यदक्ष होते है और अपनो का साथ कितना देते है, यह दिखाया गया है।

6. विवेच्य उपन्यासों को पढने के बाद यह पता चला कि इन तीनों उपन्यासों में अलग-अलग सही लेकिन समाज के बोध के दृष्टिकोन से विशेष परखा जा सकता है। इसमें समाज में स्थित अनेक घटनाओं को उद्घोषित किया है और इसके साथ ही अलकाजी ने नारी को अपना हक दिलाने की माँग की है और पुरूषों के समान सभी अधिकार पाने के लिए उत्सुक दिखायी देती है।

-----x-----